P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-11* July- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

धर्मशास्त्र में स्त्रियों के अधिकारः एक विश्लेषण

Rights of Women in Theology: An Analysis

Paper Submission: 00/00/2020, Date of Acceptance: 00/00/2020, Date of Publication: 00/00/2020

मनीषा अरोड़ा
शोधार्थिनी
संस्कृत विभाग,
जयनारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर
राजस्थान, भारत

सारांश

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकासोभ्युदय हेतु स्त्री व पुरुष का समान महत्त्व होता है। पुरुष यदि घर से बाहर के कार्यों की सुचारुता एवं उन्नति का कर्तव्य वहन करता है तो स्त्री सेवा, सुश्रूषा, स्नेहादि के माध्यम से घर के विभिन्न कष्टसाध्य दायित्वों का निर्वाह करती हुई अपनी सार्थकता को सिद्ध करती है। स्त्री व पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक है एवं एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। स्त्री के विविध रूप हैं– पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता, आदि। इन सभी रूपों का सम्बन्ध वस्तुतः परिवार नामक संस्था से है। स्त्री के विषय में जब भी चर्चा करते हैं तो सर्वप्रधान परिवार नामक संस्था के सन्दर्भ में उसके स्वरूप को प्रकट करना अनिवार्य है। परिवार नामक संस्था के एक अंश रूप में चाहे वह माता, पुत्री, भगिनी आदि किसी भी रूप में है वहाँ समाज, राष्ट्र हेतु उसकी भूमिका मुखरित होती है। स्त्री के बिना वस्तुतः पुरुष की कोई सत्ता ही नहीं होती। बृहदारण्यकोपनिषद् ने इस तत्त्व को बहुत ही सुन्दर रूप से प्रदर्शित किया है– **आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः। सोऽनुवीक्ष्य नाऽन्यदात्मनोऽपश्यत्। ... स वै नैव रेमे। तमदेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्।... सइममेवात्मानंद्वेधाऽपातयत्; ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।।**[1] अर्थात् आरम्भ में पुरुषाकार आत्मा ही थी। उसने भलीभाँति अवलोकन कर आत्मा से भिन्न कोई अन्य व्यक्त पदार्थ नहीं देखा। निश्चयपूर्वक उस अकेले ने रमण नहीं किया। इसी कारण आज भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उस पुरुष ने अपने लिये एक साथी को चाहा...। उसने उसी आत्मा को दो रूपों में परिवर्तित किया। उस समय वे पति पत्नी हुए।

जहाँ स्त्री को पिता, पति तथा पुत्र के द्वारा रक्षणीया बताया गया है । वहीं स्त्री को पुरुष के समान ही पारिवारिक धार्मिक सामाजिक आर्थिक शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में अधिकार प्रदान किए गए तथा स्त्रियों के इन अधिकारों की रक्षा हेतु नियम व दंड व्यवस्था भी की गई है।

Women and men have equal importance for the all-round development of any society or nation. If a man carries out the duties of the smooth and uplifting work outside the home, then the woman proves her worthiness through the service, Sushrusha, Snehadi, fulfilling various troublesome responsibilities of the house. Both men and women are complementary to each other and incomplete without each other. Female has various forms - daughter, sister, wife, mother, etc. All these forms are virtually related to an institution called family. Whenever discussing about a woman, it is mandatory to reveal her nature in the context of an institution called Sarvapradhan Parivar. As a part of the institution called family, whether it is in some form of mother, daughter, sister etc., its role for society, nation is emphasized. Without a woman, virtually no man has any power. The Brihadaranyakopanishad has displayed this element in a very beautiful form - Atmaivedamagra asitpurushvidhi. So-and-so ... Sai Nave Rem. Tamadekaki na Ramte, sa secondmachit ... symmevatmanandweedhapatayat; So husband wife Chabhavatam. 1 means in the beginning there was only the male spirit. He looked well and did not see any other expressed substance other than the soul. Surely that alone did not please Raman. That is why even today a lonely man does not Raman. The man wanted a partner for himself…. He converted the same soul into two forms. At that time, they became husband and wife.

Where the woman is described as protector by father, husband and son. At the same time, women have been given rights in all areas like family religious socio-economic education etc. like men, and rules and punishment system have also been made to protect these rights of women.

मुख्य शब्द : धर्मशास्त्र, स्त्री, अधिकार
Theology, Woman, Authority

प्रस्तावना

धर्मशास्त्रों में स्त्रियों के लिये विशेष व्यवस्था हमें दिखाई देती है। इनके अधिकारों आदि के सन्दर्भ में देखा जाय तो प्रत्येक स्थान पर स्त्रियों को महत्व दिया गया है। स्त्रियों के सन्दर्भ में जो उन्हें स्वतंत्र नहीं रहने की बात कही है वह उन्हें दास बनाने के उद्देश्य से नहीं वरन् उनके प्रति परिवार में पिता, पति व पुत्र के दायित्व के रूप में कही है। विशेषकर कलियुग का जो स्वरूप हमें शास्त्रों में बताया गया है तथा तदनुरूप वर्तमान में हमें दिखाई देता है उसके अनुसार स्त्रियों की सुरक्षा का दायित्व परिवार पर सर्वाधिक है। इसीलिये इस श्लोक का भाव दर्शनीय है–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्र न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।

यहाँ धर्मशास्त्र के द्वारा यह कल्याणकारी नारी स्वातन्त्र्य का अपहरण नहीं है। नारी का निर्बाध रूप से अपना स्वधर्मपालन कर सकने के लिये बाह्य आपत्तियों से उसकी रक्षा के हेतु पुरुष समाज पर यह दायित्व दिया गया है। इसीलिये नारी को पूजनीय कहते हुये मनु कहते हैं–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः।।

वेदों से ही स्त्रियों के विभिन्न प्रकार के अधिकारों का स्वरूप में दिग्दर्शित होने लगता है। कुछ क्षेत्रीय भिन्नता के कारण भेद दिखाई देता हैं किन्तु सभी ने एकमत से स्त्रियों के अधिकारों एवं उनके महत्त्व को स्वीकारा है। जैमिनी ने यज्ञ में पत्नी के समान अधिकारों के आधार पर स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों का समर्थन किया है। तथैव बोधायन व अन्य धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों को अलग तरीके से परिभाषित किया। निरुक्तकार यास्क पुत्री के साम्पत्तिक अधिकारों की विवेचना करते हुये एक ऋक् को उद्धृत करते हैं–**शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्। पित यत्र दुहितुः सेकमृ०जत्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।**[2] विवाह करने वाला सन्तानकर्म के लिये पुत्री के पुत्रभाव को प्रसिद्ध कर देता है। क्योंकि वह नप्ता को प्राप्त करता है। वह दौहित्र को पौत्र मानकर ऋत के विधान का आदर करता है। जब पिता विवाह में न दी हुई पुत्री का वरण करने वाला जामाता का स्वागत करता है तो सुखी चित्त का स्वयं को आश्वस्त कर लेता है। यास्क के अनुसार कुछ लोग इस ऋक् को पुत्री के दाय अधिकार सिद्धि हेतु, कुछ केवल पुत्र और पुत्री दोनों के लिये किया जाने वाला प्रजनन यज्ञ (गर्भाधान संस्कार) समान होता है, दोनों की उत्पत्ति की प्रक्रिया समान है। निरुक्तकार ने यास्क के उपर्युक्त कथन की पुष्टि हेतु ऋग्वेद की एक ऋचा दी है– **अंगादंगात्संभवति हृदयादधिजयते। आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्।**

धर्मशास्त्रों के अनुसार अभ्रातृमती विवाहित पुत्री जिसे पुत्रिका कहा जाता था, वह अपने पुत्र के द्वारा द्वाय की अधिकारिणी होती थी। स्मृतियाँ पुत्रिका पुत्र को मातामह की सम्पत्ति का अधिकारी मानती हैं। इसी प्रकार वसिष्ठ धर्मसूत्र पुत्रिका को ही तृतीय दायाद मानता है–**तृतीयः पुत्रिकाः।**[3]

अध्ययन का उद्देश्य

देश के विभिन्न भागों से महिलाओं के साथ हो रहे छेड़–छाड़, यौन उत्पीड़न एवं हिंसा प्रबल स्तर पर बढी हुई है । स्त्रियों के अधिकारों का विश्लेषण एवं नारी अधिकारों को प्रकट करके घटनाओं को रोकना, समाज को नारी अधिकारों के प्रति जागरूक करना नारी के प्रति सद्भाव उत्पन्न करना।

विषय विस्तार

अधिकार हमारे सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, जिसके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। अधिकारों के बिना मानव–जीवन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि वर्तमान में प्रत्येक राज्य के द्वारा अधिकाधिक अधिकार प्रदान किए जाने लगे हैं। अय्यर (1990)[4] ने अपने शब्दों में कहा है कि ये वो अधिकार हैं ''जिनके बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व का हनन और प्रतिष्ठा का विनाश हो जाता है। मौलिक स्वतंत्रताओं के छिन जाने से या विकृति आ जाने से मानव के दैवीय गुणों का ह्रास हो जाता है।'' मानवाधिकार व्यक्तित्व के विकास, शोषण रहित समाज के निर्माण, आर्थिक समृद्धि और विश्वशांति के लिए अपरिहार्य है। नारियों को प्राचीन समय से ही अनेक अधिकार प्रदत्त है। जिनका उल्लेख धर्मशास्त्र एवं स्मृति ग्रंथों में किया गया है।

(क) स्मृतिग्रंथ

पति एवं पत्नी का पारस्परिक साहचर्य ही स्त्रियों के अधिकारों को सुरक्षित रखने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दू है। स्मृतियों में स्त्रियों के अधिकारों के सन्दर्भ में जो विवेचन प्राप्त होते हैं। वे स्त्रीधर्म के रूप में ही प्राप्त होते हैं। वैसे स्त्रियों के प्रशंसा से सम्बन्धित विषयेां के अन्तर्गत मनु ने स्त्रियों की पूजा को सर्वत्र एवं सर्वश्रेष्ठ कहा है। इसका सीधा अभिप्राय है कि इसी श्लोक से ही स्त्रियेां के धर्म एवं कर्म तथा उनके अधिकारों की विवेचना हो सकती है। सर्वप्रथम स्त्रियों को पूजनीय बताने से स्त्रियों के अधिकारों से पूर्व यह सिद्ध होता है कि स्त्री रक्षणीया भी है। अतः जिसकी रक्षा की जानी अनिवार्य है तो ऐसे में उसके सारे अधिकार स्वयं सिद्ध हैं।

धार्मिक अधिकार

मन्वादि स्मृतिकारेां ने स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा की है। मनु ने कहा है–

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।।
तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ताावितरेतरम्।।[5]

अर्थात् वे दोनों दम्पत्ति उन्हें परम्पर धर्म, अर्थ एव काम के विषय में परस्पर एक–दूसरे के प्रति सत्य रहना चाहिये, तथा सदैव यह प्रयत्न करना चाहिये कि वे कभी अलग न हो सके। इस प्रकार सदैव साथ रहते हुये धर्म की क्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। पति का प्रथम कर्तव्य तथा पत्नी का प्रथम अधिकार है कि क्रम से

धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित होने देना तथा होना। सभी यज्ञ संस्थाओं में स्पष्ट आया है कि अपनी पत्नियों के साथ उन्होंने पूजा के योग्य अग्नि की पूजा की। विवाहोपरान्त पति एवं पत्नी धार्मिक कृत्य साथ करते हैं, पुण्यफल में समान भाग पाते हैं। यहीं से स्त्रियों के अधिकारों का स्वरूप प्रकट हो जाता है कि जब वे दोनों सारे धार्मिक कृत्य साथ करते हैं तथा समान फल प्राप्त करते हैं तो निश्चित ही स्त्रियेां के अधिकार भी विस्तृत हैं। जो स्त्री आध्यात्मिक स्तर पर सभी प्रकार के समान कृत्यों को करने की अधिकारिणी है यहाँ तक कि सप्त पाक संस्थाओं में तथा विभिन्न श्रौत यज्ञों में ब्रह्मचारी अथवा जिसकी पत्नी मृत्यु को प्राप्त हो गयी हो वह अनधिकारी है। ऐसे में स्त्रियों का भारतीय समाज में उच्चतम अस्तित्व स्वतः प्रमाणित है। तात्पर्य है कि केवल मात्र भौतिक ही नहीं वरन् पुरुष के आध्यात्मिक कल्याण में भी स्त्री की महत्ती भूमिका है। जिस प्रकार पति पत्नी के बिना किसी धार्मिक कार्यों का सम्पादन करने में अनधिकृत है तथैव पत्नी भी अपने पति की आज्ञा के बिना किसी कार्य को सम्पादित नहीं करती। यज्ञों में पत्नी के द्वारा निम्न कार्य प्रमुखतः किये जाते हैं (1) स्थालीपाक में अन्न को साफ करना, (2) उपसकृत पशु को धोना, अर्थात् पशु की पूजा होने से पूर्व उसे अलंकृत आदि करना, यहाँ उसके वधादि का वर्णन कहीं प्राप्त नहीं होता।, (3) श्रोत यज्ञों में आज्य की ओर देखना धार्मिक कृत्य पति–पत्नी साथ ही करते हैं। इसका एक प्रकट प्रमाण है कि भगवान् राम के द्वारा अश्वमेध यज्ञ के समय भगवती सीता की स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण करवाया गया था। पाणिनि ने 'पत्नी' शब्द का निर्वचन करते हुये कहा है जो यज्ञ तथा यज्ञ के फल में भागी होती है वह पत्नी है। इससे स्पष्ट है कि जो स्त्रियाँ यज्ञ में पति के साथ नहीं हैं वे जाया, भार्या, पत्नी आदि नामों से संज्ञित नहीं हो सकती। मनु ने कहा है कि पत्नी के रजस्वला होने के समय बिना पत्नी के सम्पादित यज्ञ का आधा फल होता है। यही नहीं उनका मानना है कि यदि पत्नी अपने पति से पूर्व मृत्यु को प्राप्त हो जाती है तो यज्ञ के पात्रों को उसके शव के साथ चिता की अग्नि में भेंट करना चाहिये–

अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देहसंयता।
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च।।
एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित्।
भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि।।[6]

अर्थ एवं विधि सम्बन्धी अधिकार

स्त्रियों को अर्थ एवं विधि सम्बन्धी व्यापक अधिकार स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों यथा सूत्रों एवं अर्थशास्त्रादि में दिखाई देते हैं। स्मृतियों में स्त्रियों की प्रशंसा परक कई वचन प्राप्त होते हैं यथा मनु–

पितृभिर्भ्रातृभिश्चेताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्करेशूत्सवेशु च।।
संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलं।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।।[7]
भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।।

इस प्रकार जब स्त्रियों को इतना महत्त्व दिया गया है तो निश्चित ही उनके अधिकारों पर भी जो कि उनके सम्पत्ति के अधिकार एवं अन्य विधि सम्बन्धी अधिकारों पर भी चर्चा प्राप्त होती है। प्राचीनकाल से आधुनिक संविधानों में देखे जाने पर एक बात अत्यन्त ही सूक्ष्मता से यह दिखाई देती है कि संवैधानिक स्तर पर स्त्री के प्रति अत्यन्त सौम्य स्वरूप दिखाई देता है। स्त्रियों के अधिकारों को केवल इसी रूप में नहीं देखा जा सकता कि उनके प्रत्यक्ष अधिकार कितनी मात्रा में विवेचित हैं? प्रत्युत पुरुष वर्ग के लिये स्त्री के प्रति दिये गये दायित्व भी स्त्रियों के अधिकारों की श्रेणी में ही आते हैं। अतः याज्ञवल्क्य, वसिष्ठादि धर्मशास्त्रकारों का मत है कि यदि कोई स्त्री व्यभिचार करती है तो उसका त्याग कर देना चाहिये। परन्तु यहाँ उसे किसी प्रकार के दण्ड की चर्चा नहीं की गई है। महाभारत शान्तिपर्व में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि यदि स्त्री कुमार्ग पर चलती है तो यह उसके पति का दोष है न कि पत्नी का[8]। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में भी पुरुषों को प्रतिबन्धित करते हुये कहा है कि –

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः।।[9]

इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है कि पुरुष के व्यभिचारी होने पर जो उसे स्त्रियों की सुरक्षा का दायित्व दिया गया है उसका निर्वाह वह कैसे करेगा। यहाँ स्पष्ट रूप से पुरुष को व्यभिचार न करने का आदेश है पर यह स्त्री का अधिकार भी है। भारतीय ऋषियों ने स्त्री जाति के प्रति सदैव ही उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया है जहाँ उनके लिये पतिव्रतधर्म के अनुशसित आदर्श प्रस्तुत किये हैं वही उनकी मानवीय दुर्बलताओं के परिप्रेक्ष्य में उनके प्रति अत्यन्त ही सौम्य सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। पतिव्रत धर्म को जहाँ सर्वश्रेष्ठ कहा है उस दृष्टि से स्त्री के लिये व्यभिचार अत्यन्त भयंकर अपराध है, परन्तु सूत्र ग्रन्थों में इस विषय पर स्पष्ट कर दिया है कि स्त्री स्वयं प्रायश्चित्त करे उसके लिये किसी संवैधानिक स्तर पर दण्ड का विधान नहीं किया अपितु उसे त्यागने का कहा है, मिताक्षरा ने इस त्यागने को स्पष्ट कर दिया कि त्यागने का तात्पर्य उसे घर से नहीं निकला जायेगा वरन् अपने ही घर मे उसके रहने आदि की व्यवस्था करते हुये उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं बनाया जाना चाहिये–

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्।
परिभतामधः शयां वासयेद्व्याभिचारिणीम्।
या व्यभिचरति तां हृताधिकारां भृत्यभरणाद्यधिकाररहितानां धिक्कारादिभिः परिभूतां भूतलशायिनीं स्ववेश्मन्येव वासयेत्।[10] इस प्रकार मिताक्षरा में यही कहा है कि व्यभिचारिणी स्त्री को भी अपने पति के गृह में निवास करने का अधिकार है तथा मिताक्षरा ने यहाँ

साथ में यह भी कहा है कि यदि पुरुष व्यभिचारी है तो उसके साथ भी यही व्रत विहित है–**यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्।।** अतः पुरुष को व्यभिचार करने की अनुमति नहीं है। यहाँ स्त्री के अपराध पर भी उसे अधिकार दिया गया है कि उसे त्यागना चाहिये किन्तु धर्म व गृहस्थ जीवन से त्यागना चाहिये न कि उसे एकाकी रूप से घर से बाहर कर देना चाहिये। अपरार्क ने भी इसी प्रकार स्त्री को अधिकार दिया है– **धने च धर्मे च निरस्तैश्वर्यां मलिनशरीरवस्त्रां देह धारण समार्थान्नमानत्रोप जीविनीमवज्ञातां क्षितिशायिनीं च कृत्वा व्यभिचारिणीं गृहैकदेशे वासयेत्। अत्र मनुः–"विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि। यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्।।" इति नारदः– व्यभिचारे स्त्रियामौण्ड्यामधः शयनमेव च।।" कृतप्रायश्चित्ता तु संव्यवहार्या भवति।**[11]

स्त्रियों की सुरक्षा को स्मृतियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। बाल्यावस्था में पिता, कुमारावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के द्वारा संरक्षणीय स्त्री के प्रति यदि किसी प्रकार की अनधिकृत चेष्टा होती है तो यदि केवल शारीरिक स्तर पर छेड़छाड़ किया जाय यथा स्पर्श करना आदि तो उसके हाथों को कटवा देना चाहिये यदि अधिक साहस दिखाया है तो उसका तत्काल वध का विधान स्मृतियों में प्राप्त होता है– **दूषणे तु करछेद उत्तमायां वधस्तथा।**[12] सुबोधिनी कार ने इस पर लिखा है– **यो बलात्कारेण दर्पादिभिः कन्यमंगुलिप्रक्षेपयोगेन योनौ क्षतवतीं कुर्यात्, तस्य अंगुलिद्वयंछेत्तव्यम् षट्छतं दण्डं चार्हतीत्यस्यार्थः**[13] **इस प्र**कार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों को अपने विरुद्ध किये जाने वाले अपराधों के सन्दर्भ में स्मृतियों में कठोर दण्डों का प्रावधान है साथ ही यौन हिंसा में स्त्रियों से सामाजिक स्तर पर भेदभाव न हो इसके लिये भी विधान दिया गया है। यह सामाजिक संरचना व यान्त्रिकी के लिये आदर्श है।

नारद स्मृति ने दायभाग प्रकरण में स्त्रीधन पर व्यापक चर्चा की है। पिता की सम्पत्ति में सभी का अधिकार है–

पितर्यूध्वं गते पुत्रा विभजेरन्धनं क्रमात्।
मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितॄणां तदन्वयः।।[14]

पिता के स्वर्गवास होने पर पुत्रों को सम्पत्ति का विधि के अनुसार विभाजन करना चाहिये तथा उस धन में से माता तथा पुत्रियों को भी अधिकार प्राप्त है। विशेष कर पिता के पास जो स्त्रीधन के रूप में अपनी पत्नी का धन है वह पूर्णतः पुत्रियों को एवं पुत्री के जीवित न रहने की स्थिति में उसकी सन्तान को वह सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार है। इस विषय पर असहाय ने भाष्य करते हुये कहा है– **यत्तु दुहितृमात्राधिकारार्थं गौतमवचनम्। स्त्रीधन दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च। यच्च नारदस्य मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितॄणां तदन्वयः।... तानि देवलवचनविरोधने यौतकद्रव्यविषयाणि। अत एवं मनुः। मातुलस्तु यौतके यत्स्यात्कुमारीभाग एवं सः।। दौहित्रीणामप्यभावे दौहित्रा धनहारिणः। यथाह नारदः । मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितॄणां मदन्वयः। इति तच्छब्देन संहितहितदुहितृपरामर्शात्।**[15] भस्वामी ने भी अपनी टीका में यही लिखा है कि माता की सम्पत्ति की अधिकारीणी उसकी पुत्रियाँ तथा पुत्री के जीवित न रहने पर उसकी सन्तान जिसमे प्रथमतः पुत्री की पुत्री एवं पुत्री सन्तान न होने पर पुत्री के पुत्र उस सम्पत्ति के अधिकारी हैं–**पितरि मृते पितुर्धनं पुत्रा विभजेयुः। विभागो वक्ष्यमाणः। मातुश्च धनं मातरि मृतायां विभजेयुरित्येव दुहितरः। दुहित्रावे दोहित्रादयः।।**[16] इसी नियम के कारण आज भी लोक में प्रचलित है कि माता अथवा पिता किसी की भी मृत्यु होने पर कन्या को स्वर्ण दान में दिया जाता है। यह नियम कहीं कहीं इतना अधिक दृढ़ है कि माता–पिता के द्वारा कोई सम्पत्ति नहीं छोड़े जाने के उपरान्त भी कन्या को विशेषकर जब वह विवाहिता है तो उसे स्वर्ण दान देना अनिवार्य है।

निष्कर्ष

इस प्रकार धर्मशास्त्रो मे स्त्रियों को अनेक अधिकार दिये गये है तथा वर्तमान परिपेक्ष्य मे भी इन प्रदत्त अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा व दण्ड की व्यवस्था की गयी है इन अधिकारों के प्रति स्त्रियों का सजग होना आवश्यक है।

अंत टिप्पणी

1. *बृहदारण्यकोपनिशद् 1.4.1–3*
2. *ऋग्वेद 3.31.1*
3. *वसिष्ठधर्मसूत्र 17.15*
4. *अयर वी.रावकृश्ण, ह्यूमन राइट्स एण्ड अह्यमनरॉस–पृ 86, 1990*
5. *मनुस्मृति 9.101–102*
6. *मनुस्मृति 5.166–168*
7. *मनुस्मृति 3.55–58, 60–63*
8. *धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी.काणे, भाग–1, पृ–325, महाभारत, शान्तिपर्व 267.38*
9. *याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.81*
10. *याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.70, मिताक्षराटीका, पृ,–47*
11. *याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.70, अपरार्कटीका, पृ–47?*
12. *याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.288*
13. *याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.288, सुबोधिनी टीका, पृ.–1100*
14. *नारदस्मृति, दायभाग प्रकरण, श्लोक संख्या– 2*
15. *नारदस्मृति, दायभाग प्रकरण, श्लोक संख्या– 2 पर असहाय का भाष्य।*
16. *नारदस्मृति, दायभाग प्रकरण, श्लोक संख्या– 2 पर भस्वामी कृत भाष्य।*